International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(5): 206-209

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(5): 206-209
© 2019 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 22-07-2019
Accepted: 24-08-2019

Rajni Sharma
Post-Lecturer, Department of Sanskrit, Wisdom Education College, Moradabad, Uttar Pradesh, India

Correspondence
Rajni Sharma
Post-Lecturer, Department of Sanskrit, Wisdom Education College, Moradabad, Uttar Pradesh, India

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म मीमांसा

Rajni Sharma

प्रस्तावना

एषा यथोक्ता ब्राह्मी ब्रह्मणि भवा इयं स्थितिः सर्वः

> कर्मसन्यस्य ब्रह्मरूपेणैव अवस्थानम् इत्येतत्। हे पार्थ ! न एनां स्थितिं प्राप्य लब्धवा न विमुह्यति न मोहं प्राप्नोति। स्थित्वा अस्यां स्थितौ ब्राह्मयां
> यथोक्तायां अन्तकालेऽपि अन्त्ये वयस्यपि ब्रह्मनिर्वाणं
> ब्रह्मनिर्वृत्तिं मोक्षम् ऋच्छति गच्छति। किमु वक्तव्यं
> ब्रह्मचर्या देव संन्यस्य यावज्जीवं योब्रह्मण्येव
> अवतिष्ठते स ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति इति।[1]

वैदिकज्ञान की सारभूता श्रीमद्भगवद्गीता को गीतोपनिषद् भी कहा जाता है। भगवद्गीता का मर्म भवद्गीता में ही व्यक्त है – "सर्वशास्त्रमयी" गीता। गीता स्वयं भगवान के मुखारविन्द से निकली है। इसलिए उसे सभी शास्त्रों से बढ़ कर कहा जाये तो भी अत्योक्ति नहीं होगी।[2]

कर्मसीमांसाः कर्म शब्द कृ धातु से बना है जिसका अर्थ है करना, व्यापार या हलचल होता है। यही अर्थ गीता में विहित है। भगवद्गीता में सन्यास की अपेक्षा कर्मयोग को श्रेष्ठ माना गया है।
श्रीमद्भगवद्गीता में कर्ममार्ग का विवेचन कर्मयोग अथवा कार्य की पद्धति का प्रसंग निर्देश करते हुए तृतीय अध्याय में कहा गया है कि मनुष्य एक क्षण भर भी कर्म किये हुए नहीं रह सकता क्योंकि प्रकृति स्थित त्रिगुण उन्हें स्वाभाविक रूप से कर्म करने को बाध्य करते रहते हैं। [3] इतना ही नहीं यह विशाल विश्व भी कर्म पर आधारित होकर लोकोऽयं कर्मबंधनः [4] की सार्थकता सिद्ध करते हुए दीखते हैं। अतः श्रीमद्भगवद्गीता विश्व के अनवरत कर्म चक्र के बीच मनुष्य को अनासक्त भाव से यज्ञ के रूप में कार्यरत रहने की प्रेरणा देती है। [5] यहॉ यह स्मरणीय तथ्य है कि मीमांसा भी वैदिक कर्मकांड का आश्रय लेकर कर्म के विचार का प्रतिपादन करते हैं –
यहॉ कर्म का अभिप्राय यज्ञ से है किन्तु गीता इनसे भिन्न यज्ञ का व्यापक अर्थ लेती है। वैदिक यज्ञ का विस्तृत आध्यात्मिक निरूपण करते हुए यह बतलाती है कि अनासक्त भाव से कर्म को यज्ञ समझ कर करने वाला व्यक्ति कर्म के बंधन में नहीं बंधता। [6]
कर्मचक्र से कोई व्यक्ति अलग नहीं रह सकता। ऑख को देखना ही है, कान को श्रवण करना ही है तथा शरीर को इच्छानुकूल या इच्छा के प्रतिकूल संचालित होना ही है। जड़ता मृत्यु है। अतः कर्म जीवन का निधान है। किन्तु कर्म में एक दुर्गुण निहित है जो सतत् कर्त्ता को बंधन में डालने को तत्पर रहता है। यह दुर्गुण वासना या आसक्ति है। जब कोई व्यक्ति आसक्ति अथवा फलाकांक्षा से कर्म करता है। तब ऐसे कर्म को सकाम कर्म की संज्ञा दी जाती है। इच्छा से प्रेरित ऐसे ही कर्म मनुष्य को बंधन में डाल देते हैं।[7] इससे यह स्पष्ट है कि कर्म अपने आप में बुरा नहीं, कर्म में आसक्ति विषदंत स्वरूप है। इसलिए गीता में सकाम कर्म को मनुष्य के अधःपतन का कारण तथा आध्यात्मिक उन्नयन में बाधक माना गया है। कामना से लिए कर्म का फल भोगना अवश्यम्भावी है, किन्तु गीता यह भी स्वीकार करती है कि ऐसे कर्म को यदि कुशलतापूर्वक सम्पादित किया जाय जिससे आसक्ति की समाप्ति हो जाय तो कर्म बंधन उत्पन्न करने में सक्षम नहीं होते। इसी अर्थ में कर्म की कुशलता को यहॉ योग की संज्ञा दी गयी है – योगः कर्मसु कौशलम[8] तथा निष्काम कर्मयोग की प्रधानता स्वीकार की गयी है। अतः इनका सम्यक् विवेचन वांछित है।
इसे दुर्बलता तथा अज्ञान के वशीभूत का प्रतीक माना है।[9] इसी पृष्ठभूमि में कर्म अच्छा है या कर्मत्याग, जैसे प्रश्नों का विवेचन प्रस्तुत करते हुए भगवद्गीता निष्काम कर्मयोग का मूलमंत्र उपस्थित करती है।

भारतीय दर्शन में कर्मवाद को प्रश्रय दिया गया है। इस सिद्धांत के अनुसार कर्म–फल संस्कार रूप में सदैव सुरक्षित रहते हैं तथा मानव जीवन की घटनाओं को परिचालित करते रहते हैं। कर्म के कारण ही मनुष्य सांसारिक बंधन में बंधा रहता है तथा इसी के बंधन से छूटने का नाम मोक्ष है। कर्म के बंधनों के कारण ही आत्मा को बार–बार शरीर धारण करना पड़ता है। इस सामान्य कर्म की धारणा तथा ज्ञान मार्ग के विवेचन के कारण अर्जुन के मन से संशय उत्पन्न हो जाता है तथा वह प्रश्न करता है :–

हे जनार्दन, यदि तू समझता है कि बुद्धि का मार्ग कर्म के मार्ग से श्रेष्ठ है तो मुझे इस भयंकर कर्म को करने के लिए क्यों कह रहा है?[10]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि साधारण मानव एक ओर तो सामान्य कर्मफल एवं फलाफल से अनासक्त कर्म के बीच भेद नहीं कर पाता तथा दूसरी ओर ज्ञान एवं कर्म के बीच भेद करके ज्ञान की ही श्रेष्ठता स्वीकार करता है। अर्जुन का मन ऐसी ही ऊहापोह स्थिति का प्रतीक है। यहॉ यह स्मरणीय है कि भारतीय विचारधारा में प्रचलित निवृत्ति एवं प्रवृत्ति मार्गों का वर्णन भी ऐसी विषादपूर्ण स्थिति को उत्पन्न करने में स्वभावतः योगदान दे रही है। निवृत्ति मार्ग में परमलक्ष्य को प्राप्त करने के लिए क्षणभंगुर जीवन तथा जगत् के त्याग पर बल दिया जाता है तथा स्वीकार किया जाता है कि सांसारिकता से विमुख होकर ही ऐसे लक्ष्य की प्राप्ति संभव है। प्रवृत्ति मार्ग में इस लोक एंव परलोक में सुखों की प्राप्ति के लिए वेद विहित कर्मों का संपादन श्रेयस्कर माना गया है। यहां सकाम कर्म को प्रधानता दी गयी है। यही कारण है कि भगवद्गीता इन मार्गों के वास्तविक रूप को उपस्थित कर सारी दुविधाओं को समाप्त करने का प्रयास करती है। इनके अनुसार निवृत्ति मार्ग का अनुसरण साधारण मानवों के लिए अत्यंत ही कठिन है। इतना ही नहीं कर्मों का पूर्ण त्याग भी संभव नहीं है। प्रवृत्तिमार्ग या सकाम कर्म को अपनाने से केवल पापयुक्त इंद्रिय सुख प्राप्त होता है तथा अंततः मानव का जीवन निरर्थक एवं शांति विहीन हो जाता है। भगवद्गीता नैष्कर्म्य तथा सकाम कर्म से ऊपर उठकर निष्काम कर्म का आदर्श उपस्थित करती है। अतः गीता का आदर्श नैष्कर्म्य न होकर निष्काम कर्म है। प्रो0 हिरियान्ना ने कहा है – "गीता का उपदेश कर्म का त्याग नहीं कराता, बलिक कर्म में त्याग सिखाता है।"[11]

भगवद्गीता में स्पष्टतः स्वीकार किया गया है कि ज्ञान मार्ग चिंतनशील व्यक्तियों के लिए है तथा कर्मशील व्यक्तियों के लिए कर्ममार्ग है।[12]

भगवदगीता का यह विचार मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी संपुष्ट है। सामान्यतया दो प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति होते हैं – बहिर्मुखी एंव अंतर्मुखी। प्रथम बाह्य संसार में अभिरूचि रखता है तो दूसरा आंतरिक चिंतन में रूचि प्रकट करता है। अतः वैसे व्यक्ति जिनकी रुझान बाह्य जगत में है, कर्ममार्ग का अनुसरण कर जीवन को सफल बना सकते हैं तथा जो आंतरिक चिंतन में तल्लीन रहते हैं उनके लिए ज्ञानमार्ग का अनुगमन करना श्रेयस्कर है। गीता दोनों में विरोध नहीं मानती, अपितु परस्पर एक दूसरे को सहायक मानती है। "वे एकांतिक नहीं है, अपितु परस्पर पूरक हैं।[13] महाभारत ने इन्हें "द्वाविभावथ पन्थानो"[14] स्वीकार किया है। भगवद्गीता का यह विचार है कि कर्म करने से ही कोई व्यक्ति कर्म से मुक्ति नहीं पा सकता और न कर्म संन्यास से ही उसे पूर्णता प्राप्त हो सकती है।[15] व्यक्ति को कर्म करना है, क्योंकि कर्म किये बिना वह क्षणभर भी नहीं रह सकता है। अतः कर्मेन्द्रियों को संयत रखने, मन द्वारा उनके नियंत्रण तथा अनासक्त भाव से कर्म करने को उत्कृष्ट माना गया है।[16]

यहॉ यज्ञ के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कर्म के महत्व को स्वीकारा गया है। यज्ञ को सामान्य अर्थ में न लेकर विशिष्ट अर्थ में लिया गया है। गीता यज्ञ को यज्ञ के लिए तथा सब प्रकार की आसक्ति से मुक्त होकर यज्ञ करने[17] की राय देती है। ऐसे अनासक्त यज्ञ का अनुष्ठान निष्काम कर्म को प्रश्रय देते हैं। जनक आदि का उदाहरण उपस्थित करते हुए यहां यह बतलाया गया है कि कर्म के द्वारा इन लोगों ने पूर्णता की प्राप्ति की तथा वे दूसरों के लिए उदाहरण स्वरूप बने हैं।

कर्म एवं फल के संबंध को चार संभव समुच्चयों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :– 1. आलस्यवश न फल की इच्छा रखना और न उसके लिए कर्म ही करना, 2. फल की इच्छा से कर्म करना, 3. फल की अनावश्यकता या फल की निरर्थकता से उनकी ओर आकांक्षा नहीं रखते हुए कर्म नहीं करना, 4. अनासक्त भाव से कर्म करना। इनमें से अंतिम अर्थात् अनासक्त भाव से कर्म करना गीता–सम्मत निष्काम कर्मयोग है। कर्मफल त्याग को प्रश्रय देकर भगवद्गीता ने विश्व दर्शन में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया है। गीता के फल त्याग में अपरिमित श्रद्धा की परीक्षा है।[18]

भगवद्गीता का निष्काम कर्म का मार्ग अनासक्त कर्मयोग का मार्ग है, जहां व्यक्ति निष्काम भाव से कर्म में संलग्न रहता है। इसे स्पष्ट किया गया है– कर्म फल के प्रति आसक्ति को त्याग कर, सदा तृप्त रहकर, बना किसी पर आश्रित हुए कार्यरत व्यक्ति ही निष्काम कर्मयोगी है।[19] ऐसे व्यक्ति को कर्म दूषित नहीं करते और न उन्हें कर्मफल के प्रति इच्छा ही रहती है।[20] ऐसी स्थिति में व्यक्ति के लिए कर्म का करना यज्ञ का करना रह जाता है तथा उनके सारे कर्म आत्म–संयम रूपी योग की अग्नि में समर्पित हो जाते हैं।

ऐसी स्थिति को समत्व योग की स्थिति[21] कहकर संबोधित किया गया है। भगवद्गीता का निष्काम कर्मयोग यंत्रवत् क्रिया से सर्वथा भिन्न है। प्रायः प्रत्येक धर्मों में नैतिक गुणों को दैनिक क्रिया तथा प्रार्थना की समय–सारणि में आबद्धकर आत्मविहीन कर्मकाण्ड को प्रश्रय दिया जाता है। एवं इसे आत्मशुद्धि का नियामक माना जाता है। भगवद्गीता ऐसे विचार का विरोध करती है तथा वैदिक यज्ञ के विचार को सर्वथा नूतन धरातल परर उपस्थित करती है। यह "यज्ञार्थात्कर्मणो [22] के विचार का समर्थन करती है तथा सारे कर्मों को यज्ञ की भावना से करने की सलाह देती है।

निष्काम कर्मयोग में राग–द्वेष सुख–दुःख, जय–पराजय जैसे द्वैत का महत्व नहीं है। यह अहंकार एवं ममता की भावना से रहित, सम दुःख–सुख की स्थिति है। मनुस्मृति में भी यह स्पष्टतः स्वीकार किया गया है कि जो आत्म–त्याग में विश्वास करता है, जो सृष्टि के समस्त चराचर में आत्मा का निवास मानता है तथा समस्त सृष्टि को आत्मा में निहित मानता है, वह स्वराज्य या मुक्ति की प्राप्ति कर लेता है।[23] ऐसे ही स्वराज्य की स्थिति की प्राप्ति गीता में वर्णित "राजकीय मार्ग" (रॉयल रोड़)[24] अथवा निष्काम कर्मयोग की प्रतिनिधित्व करते हैं। कर्म मनुष्य को बंधन–चक्र में आबद्ध करते हैं, किन्तु कीमिया या जीवन रस के रूप में प्रयुक्त निष्काम कर्म मानव जीवन को तत्त्वान्तरित कर मोक्ष की ओर ले जाने वाले स्वर्णिम सोपान[25] का निर्माण करते हैं। निष्काम कर्म योग एवं परिणाम की चिंता किए बिना कर्म करने के बीच तादात्म्य माना गया है। भगवद्गीता में इसे स्पष्ट किया गया है – "तुझे केवल कर्म करने का अधिकार है, उनके फल में कभी नहीं और न अकर्म के प्रति तेरा अनुराग हो।"[26] इस श्लोक में अनासक्ति का मूल सिद्धान्त निहित है। कर्मयोग का यह महामंत्र है। इसके चारो पद कर्मयोग की "चतुःसूत्री"[27] है। इस प्रकार गीता की यह मान्य धारणा है कि मनुष्य को कर्म का त्याग न कर कर्मफल का त्याग करना चाहिए।

निष्काम कर्म मार्ग के स्वरूप पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसके तीन पहलू हैं। सर्वप्रथम फल की आकांक्षा का त्याग आवश्यक है। पुनः अपने को कर्त्ता समझना भूल है। कर्तृत्व के अहंभाव का त्याग भी आवश्यक है। अंत में सभी प्रकार के कर्मों को ईश्वर को अर्पित कर ही उसका संपादन करना[28] अभीष्ट है। इस प्रकार, कर्ममार्ग की चरम परिणिति अनासक्ति एवं समर्पण की भावना से किये कर्म के फलस्वरूप प्राप्त स्निग्ध पवित्रता में निहित है। अतः इन तीनों सोपानों के माध्यम से ही निष्काम निर्भयता का अनुभव करता है तथा उसे कर्म की कुशलता का भान होने लगता है। इस प्रकार कर्म योग की निष्पत्ति होती है। इस कर्म फल त्याग

के उद्देश्य से किये गए अर्थात् निष्काम कर्मयोग को महात्मा गांधी ने "अद्वितीय उपाय"[29] की संज्ञा दी है।

भगतद्गीता द्वारा प्रतिपादित निष्काम कर्म की संभावना पर संशय प्रकट किया गया है। यह माना गया है कि बिना फलेच्छा के किए गये कर्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी संभव नहीं है। ऐसे विचार गीता के निष्काम कर्म को कपोल–कल्पना मानते हुए दीखते हैं। किन्तु ऐसे संशय का उत्तर भगवद्गीता में ही उपलब्ध है। गीता कर्मत्याग का उपदेश नहीं देती और न फलत्याग का ही, वरन् यहां फल की आसक्ति को त्यागने या स्वार्थ परायण इच्छाओं के छोड़ने की राय दी गयी है। ऐसे त्याग का आधार लोक संग्रह या संसार को बनाये रखना है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर भगवद्गीता में कहा गया है – "विद्वान व्यक्ति अनासक्त होकर लोक संग्रह की इच्छा से कर्म करते हैं।[30] ऐसी स्थिति में कर्म, कर्म के लिए किया जाता है तथा इन कर्मों के पीछे आत्मसिद्धि, आत्मज्ञान अथवा आत्मानुभूति निहित रहती है। थियोलोजिया जर्मनिका में भी भगवद्गीता के उपर्युक्त विचार को शक्ति प्रदान करते हुए स्पष्ट लिखा गया है – "हमें अपने लिए कुछ प्राप्त करने से अवश्य विमुख होना चाहिए। ऐसा करने पर हमें सर्वोत्तम, पूर्णतम, स्वच्छतम एवं परम उदात्त ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है, ऐसे ज्ञान तथा ऐसे निष्पाप एवं उदात्त इच्छा की प्राप्ति मनुष्य कर सकता है।" निष्काम कर्म का यह मार्ग दुष्कर एवं श्रम साध्य अवश्य है, किंतु इसकी असंभावना स्वीकार करना सर्वथा अयथार्थ है। भगवद्गीता का यह मार्ग सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों ही दृष्टिकोणों से सशक्त एवं सुदृढ है। यदि व्यक्ति निष्ठापूर्वक अपने कर्त्तव्य के पालन में रत रहे तो उसे सिद्धि की प्राप्ति हो ही :–

स्वे स्वे कर्मण्यमिरतः संसिद्धिं लभते नरः। [31]

(अपने–अपने कर्म में लगा हुआ प्रत्येक व्यक्ति सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।) इस प्रकार निष्काम कर्म का मार्ग प्रशस्त कर तथा स्वधर्म पालन की दीक्षा देकर भगवद्गीता ने मानव जीवन के लक्ष्य में निहित कर्त्तव्य को सत्त्व से परिपूर्ण कर मानव समदाय के समक्ष अपूर्ण एवं अद्वितीय साधन प्रस्तुत किया है।

कर्मयोग की श्रेष्ठता के सन्दर्भ में गीता में कहा गया है शास्त्रविधि से नियत किये हुए स्वधर्मरूप कर्म को कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा।[32] कर्म न करने से तू पाप को भी प्राप्त होगा क्योंकि प्रजापति ब्रह्मा ने कल्प के आदि में यज्ञसति प्रजा को रचकर कहा कि इस यज्ञ द्वारा तुम लोग वृद्धि को प्राप्त हो और यह यज्ञ तुम लोगों को इच्छित कामनाओं के देने वाला होवे।[33] तथा तुम लोग इस यज्ञ द्वारा देवताओं की उन्नति करो और वे देवता लोग तुम लोगों की उन्नति करें इस प्रकार आपस में कर्त्तव्य समझकर उन्नति करते हुए परम कल्याण को प्राप्त होओगे।[34]

हे अर्जुन ! जो पुरुष कर्म में अर्थात् अहंकार रहित की हुई सम्पूर्ण चेष्टाओं में अकर्म अर्थात् वास्तव में उनका न होना देखे और जो पुरुष अकर्म में अर्थात् अज्ञानी पुरुष द्वारा किये हुए सम्पूर्ण क्रियाओं के त्याग में भी कर्म को अर्थात त्यागरूप क्रिया को देखे, वह पुरुष मनुष्यों में महान है और वह योगी सम्पूर्ण कर्मों को करने वाला है।[35] देहाभिमानियों द्वारा यह साधन होना कठिन और निष्काम कर्मयोग सुगम है क्योंकि जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जल से कमल के पत्ते के सदृश पाप से लिपायमान नहीं होता।[36] यदि कोई मनुष्य जो कुछ कर्म वह सब ही दुःखरूप है ऐसा समझकर शारीरिक क्लेश के भय से कर्मों का त्याग कर दे तो वह पुरुष उस त्याग को करके भी त्याग के फल को प्राप्त नहीं होता है अर्थात् उसका वह त्याग करना व्यर्थ ही होता है।[37]

जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग का आचरण करता है वह व्यक्ति श्रेष्ठ है।[38] इसलिए ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि कर्मों में आसक्ति वाले अज्ञानियों की बुद्धि में भ्रम अर्थात् कर्मों में अश्रद्धा उत्पन्न न करे किन्तु स्वयं परमात्मा के स्वरूप में स्थित हुआ और सब कर्मों को अच्छी तरह करता हुआ उनसे भी वैसा ही करावे।[39]

संधर्व सूची

1. श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य श्रीमच्छंकरभगवतः कृतौ श्रीमद्भगवदगीता भाष्ये द्वितीयोऽध्यायः।।
2. गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः। या स्वयं पद्यनाभस्य मुखपद्याद्हिनिसृता।।
3. न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। 3.5
4. यज्ञार्थात्मकर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः। तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्.गः समाचरः।। 3.9
5. जैमिनि मीमांसा सूत्र – 1.21
6. गतसङ्.स्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः यज्ञायचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते।। 4.23
7. युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्। अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते।। 5.12
8. बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते। तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।। 2.50
9. कार्पण्यदोषोपहतः स्वभावः प्रच्छामि त्वां धर्मश्चेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मत्वां प्रपन्नम्।। 2.7
10. ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन। तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव।।
11. प्रो0 हिरियान्ना, एम0 :– भारतीय दर्शन की रूपरेखा
12. लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ। ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्। 3.3
13. डा0 राधाकृष्ण द्वारा अनुदित "भगवद्गीता" पृष्ठ – 135
14. शान्तिपर्व – 240, 60
15. न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोश्नुते। न च सन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।। 3.4
16. यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन। कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते।। 3.7
17. यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्.गः समाचर।। 3.9
18. गांधीः "अनासक्ति योग" की प्रस्तावना, पृष्ठ –7
19. त्यक्त्वा कर्मफलाङ्.गः नित्यतृप्तो निराश्रयः। कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः।। 4.20
20. न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृह्म। इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते।। 4.14
21. योगस्थः कुरू कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनन्जयः। सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। 2.48
22. यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। तदर्थ कर्म कौन्तेय मुक्तङ्.गः समाचर।। 3.9
23. सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। समं पश्यन्नात्मयाजी स्वराजमधिगच्छति।। मनुस्मृति – 12.91
24. देसाई, महादेवः द गास्पेल ऑफ सेल्फसेल्स एक्सन, पृष्ठ – 118
25. देसाई, महादेवः द गास्पेल ऑफ सेल्फसेल्स एक्सन, पृष्ठ – 118
26. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते सङ्.गोस्त्वकर्मणि।। 2.47
27. उपाध्याय पंडित बलदेवः भारतीय दर्शन, पृष्ठ – 83
28. यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरूष्व मदर्पणम्।। 9.27
29. गॉधीः अनासक्ति योग की प्रस्तावना – पृष्ठ – 6
30. कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः

लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कुर्तमर्हसि।। 3.20

31. स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छ्रणु।। 18.45
32. नियतं कुरू कर्म त्वं कर्म ज्यायो हि अकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः।। 3.8
33. सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यवमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।। 3.10
34. देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।। 3.11
35. कर्मण्यकर्म य पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।। 4.18
36. ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्.गः त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।। 5.10
37. दुखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्।। 18.8
38. यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते।। 3.7
39. न बद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्.गःनाम्।
जोषयेत्सर्वकमर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्।। 3.26